साहित्य संहिता
Available at http://sahityasamhita.org/
ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 3
March 2016

कबीर की अन्तर्व्यथा जनजीवन की व्यथा

डॉ॰ किरण ग्रोवर
एसो॰प्रो॰,स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग ,डी ॰ए ॰वी॰ कॉलेज, अबोहर।
groverkirank@gmail.com

साहित्य में ंशब्द और अर्थ का समन्वय होता है। साहित्य द्वारा संसार का समस्त ज्ञान लिखित रूप में ंएकत्र होकर सुरक्षितता की दृष्टि से चिरस्थायी बन जाता है। साहित्य में नए रहस्यों का उद्घाटन होता है और साहित्य सत्य और नैतिकता की राह पर चलता हैं। साहित्य और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध है। मनुष्य सामाजिक प्राणी हाने के कारण वह समाज का प्रमुख अंग होता है। साहित्यकार वह विवेकशील तथा विचारशील प्राणी होता है, वह समाज में ंअपना अस्तित्व कायम बनाए रखने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहता है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है, इससे साहित्य और समाज एक दूसरे से प्रभावित रहते हैं अतः इन दोनों ंके प्रभाव स्वरूप साहित्य की निर्मिति होती है।

जिस प्रकार शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता रहती है उसी प्रकार मानव मस्तिष्क को भी सदैव स्वस्थ रखने के लिए साहित्य रूपी भोजन की आवश्यकता होती है। बिना भोजन जैसे शरीर निःशक्त और अन्त में निर्जीव हो जाता है ठीक उसी प्रकार बिना साहित्य के मानवीय मस्तिष्क भी बेकार हो जाता है। **अच्छे साहित्य के आस्वादन से मस्तिष्क अच्छा बनता है, अच्छे विचारों से व्यक्ति अच्छा बनता है, अच्छे व्यक्ति ही तो अच्छा समाज बनाते हैं अतः यदि समाज को उन्नत और महान बनाना अभीष्ट है, तो व्यक्तियों को उन्नत बनाना होगा।**

साहित्य तत्कालीन समय का प्रतिबिम्ब माना जाता है इसमे तत्कालीन परिस्थितियों की संवदेनाएँ व्यक्त होती हैं। यह संवदेनाएँ साहित्य द्वारा मनुष्य की मानसिकता को प्रभावित करती है, यह श्रृंखला निरन्तर रहने के कारण साहित्य और मनोविज्ञान का सम्बन्ध अटूट हो जाता है। साहित्य के अध्ययन में मनोविज्ञान का उपयोग किया जा सकता है क्योंकि मानस प्रक्रियाओं का अनुशीलन ही मनोविज्ञान का विषय है और मानव का मानस समग्र कला और विज्ञान का मूल है। मानस शास्त्र के अध्ययन से हम एक ओर किसी कलाकृति की सर्जना पर तथा दूसरी ओर उन

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 3
March 2016

तथ्यों पर प्रकाश डालने की अपेक्षा कर सकते हैं जिससें साहित्य और मनोविज्ञान का निकटतम सम्बन्ध स्पष्ट होता है। साहित्य में वर्णित विषय द्‌वारा मनोवज्ञैानिक विद्‌वान पात्रों के मनाभावों का निरीक्षण तथा परीक्षण करते हैं। साहित्य के मनोवज्ञैानिक अध्ययन द्वारा तत्कालीन मनुष्य के साथ समाज की स्थिति समझने में सहायता मिलती है। साहित्य के मनोवज्ञैानिक अध्ययन से मनुष्य के मनोभाव, विचार, व्यवहार, आचरण आदि ज्ञात हाते हैं। साहित्य के मनोवज्ञैानिक अध्ययन से मनुष्य की अतृप्त भावनाओं का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में उद्‌घाटन होता है। मनोवज्ञैानिक अध्ययन से तत्कालीन परिस्थिति में मनुष्य की संवदेनाएँ, उसके कारण स्पष्ट होते हैं अतः मनुष्य तथा समाज दोनों की मानसिक स्थितियाँ स्पष्ट होती हैं। इस अध्ययन द्‌वारा मनुष्य तथा समाज की बदलती मानसिकता से उनमें छिपे रहस्यों का परिचय मिलता है।

मध्यकालीन समाज तथा जनमानस विश्रृंखलता के कारण दिशाहीन बन गया था। तत्कालीन सन्तों ने स्वानुभव, स्वयभूं प्रतिभा तथा लोक माध्यम के बल पर समाज में ऊर्जा का निर्माण किया। कबीर स्वयं अनुभवजन्य ज्ञान की राशि थे। उनकी संवदेनशील दृष्टि अत्यधिक पैनी थी। उनमें जगत के रहस्य को यथार्थ में अभिव्यक्त करने की विशेष कला विद्यमान थी। उनके समस्त मनोभाव उनके अपने सामाजिक अनुभवजन्य ज्ञान की आधारशिला पर आधारित थें। समाज में अपने समय की स्थिति, परिवेश तथा तत्कालीन जनमानस की मानसिकता से अवगत थे। उनकी वाणी आधुनिक परिवेश में विकारग्रस्त मानव को मानसिक वेदना से मुक्ति दिलवाकर समाज की वेदना से सन्दर्भित होने की आकांक्षा जागृत करती है।[1]

कबीर जी के विचारों में सत्यता, वैज्ञानिक तथ्यपरकता थी। वे समाज के हर पहलू पर यथा समाज परिवर्तन की दृष्टि से नारी सकंल्प की अभिव्यक्ति,पशहुत्या करने वालों की निदा, समाज में फैले दुर्गणों के प्रति विद्रोही स्वर,समाज को सही राह पर चलाने की दृष्टि से समष्टिपरक भावना की अभिव्यक्ति,मानवीय नैतिक मलू्यों आदि पर बल देते थे। वस्तुतः इन सभी में उनकी सामाजिक परिवर्तन की मानसिकता विद्यमान रहती थी। इसी कारण वे सच्चे अर्थों में अपनी सत्य, ठोस दृष्टि का परिचय देते हंए वेदों ,उपनिषदों रामायण, महाभारत,

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 3
March 2016

श्रीमद्भागवत, गीता, कौटिल्य के अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों में मनीषियों ने मानव–आचरण से सम्बन्धित नियमों की व्याख्या की है जिनका पारायण मानव की मानसिक तुष्टि हेतु अनिवार्य है।[2]

कबीर की मनोवज्ञैानिक वैचारिक दृष्टि से ज्ञात होता है कि वे अपनी मनादेशा द्वारा समाज के विविध पहलू अभिव्यक्त करते थे। वे अपने आचार, विचार तथा अनुभवजन्य ज्ञान नैतिक मल्यों के बल पर जीवन के वास्तविक तथ्यों का संस्पर्श करते थे मानों वे अपनी मनादेशा द्वारा जनमानस के सामने जगत के रहस्य ही उदघाटित कर रहे हों। उनकी मनोदशा द्वारा ज्ञात होता है कि जनमानस को जीवन की सत्यता से अवगत् करना और उनमें सदविचारों का बीजारोपण करना ही उनका ध्येय था।

इस दृष्टि से कबीर मनुष्य के जीवन के विकास के लिए उसका **अहकंार** तथा ममत्व की भावना बाधक मानते थे। इसलिए वे कहते थे कि मनुष्य की अहकंार की प्रवृत्ति तथा उसकी प्रबलता के कारण मनुष्य का मन दबाव में जाता है परिणामस्वरूप अहंकार ही मनुष्य का जीवन बन जाता है।[3] अहंकार उसके जीवन को पल्लवित, विकसित नहीं होने देता तात्पर्य यह है कि शदुध संस्कार से मनुष्य का जीवन शदुध बन जाता है साथ ही दूसरों को हानि पहुँचाने की मन की भावना नष्ट हो जाती है इसलिए कबीर मनुष्य को अपने जीवन के विकास के लिए गुरु–कृपा द्वारा अहंकार को नियंत्रित कर शुद्ध पवित्र बनाने का प्रतिपादन करते थे:–

ऐसा ग्यानं बिचारि रे मना, हरि किन सुमिरै द्ुःख भंजनां।

मनष्य में **मन की चंचलता** के कारण दुविधा की स्थिति रहती है जब तक मनुष्य में दुविधा की स्थिति विद्यमान रहती है ,तब तक उसका कोई कार्य साध्य नही होता। मनावेज्ञैानिक तथ्य यह है कि मनुष्य का मन हमेशा परिवर्तित, गतिशील रहता है ,मन की गतिशीलता की ओर संकेत करते हुए कबीर कहते थे कि मन पानी से भी पतला, धूएं से भी अधिक झीना और पवन से भी अधिक तेज होता है उसे अपना मित्र बनाकर अर्थात् मन की चचंलता पर काबू पाना आवश्यक है–

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 3
March 2016

गगां मे ंजो नीर मिलैगा, बिगरि बिगरि गगांदिक व्हलै।

कबीर का मानना था कि विकारग्रस्त मन के कारण मनुष्य में अनेक **पाशविक विकृतियाँ** आ जाती हैं। उन्हें मिटाने के लिए पहले मनुष्य के मन की, हृदय की शुद्धि, पवित्रता पर बल देते थे तात्पर्य यह है कि जब तक मनुष्य का मन शुद्ध नही ंहोता है तब तक उनके विकार, अनुचित आचरण, व्यवहार नष्ट नहीं होते हैंः–

टके तब सुख पावै सुन्दरी, बह्म झलकै सीसि।

कबीर मनुष्य की अचेतन ग्रंथियाँ, उसके मन की, शरीर की क्षतिपूर्ति की स्थिति द्वारा **प्राकृतिक नियमों** ंका प्रतिपादन करते थे। अपने विचारों द्वारा मनुष्य को सचेत करते थे कि मनुष्य में कुछ बातें प्राकृतिक होती हैं लेकिन मनुष्य को उसका अत्यधिक रूप टालकर अपना मन संयमित रखना चाहिएः

कहा भयौ रचि स्वांग बनायौ ,अंतरिजामी ंनिकटि न आया।

कबीर का मानना था कि **अच्छी सगंति** से मनुष्य के दुर्गुण नष्ट होकर उनका जीवन अच्छाई में परिवर्तित हो जाता है इसी कारण कबीर मनुष्य को संगति के वातावरण के प्रभाव का महत्त्व प्रतिपादित करते रहे। सन्त–सज्जनों की समर्पण वृत्ति, उनकी त्याग भावना आदि द्वारा सगंति का प्रभाव अभिव्यक्त करते थे।[4] वे मनुष्य को मन की पाशविक वृत्तियाँ नष्ट कर उसे नियन्त्रित करने के लिए सचेत करते थे। इसलिए वे आचरण, सदाचार तथा सद्‌विचारों का महत्त्व प्रतिपादित करते थे। सांसारिक जीवों के लिए उनकी यही सीख थी।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में अनके घटनाएँ घटित होती है कुछ घटनाएँ ,कुछ प्रसंग ऐसे होते है जो मनुष्य के मन को हमेशा व्यथित करते रहते हैं मानों वे मनुष्य के **मन की अन्तर्व्यथा** ही बन जाते हैं, उनकी यादें मनुष्य को निरन्तर सताती रहती हैं, बेचैन करती रहती है। जो मनुष्य ज्ञानी होते हैं वे संयमित होते हैं। वे अपनी अन्तव्यर्थाा भी जनजीवन की व्यथा के रूप में देखते हैं। कबीर की दृष्टि से मनुष्य का जीवन सुख–दुःख की स्थिति में व्यतीत होता है। मनुष्य जीवन में व्यतीत हुई घटनाओं के विरह जनित यादों से व्यथित होता है, कबीर की दृष्टि से उसे स्वीकार

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 3
March 2016

कर उसे अपना साथी मानकर जीने में ही जीवन की साथर्कता होती है। कबीर को भी अपने बीते हुए जीवन के पल स्मरण आते थे परन्तु वे अपने ह्रदय की मनोव्यथा द्वारा जनमानस को सचेत करते थे कि जीवन में अनेक ह्रदय द्रावक स्थितियाँ आती रहती है उनकी दृष्टि से मनुष्य को विचलित न होते हुए जीवन यापन करना चाहिए।[5]उनका मानना था कि **ज्ञान–प्राप्ति** से मनुष्य वास्तविकता से परिचित हो जाता है उससे उनके शारीरिक, मानसिक विकार नष्ट हो कर जीवन का विकास होता है, उनके माध्यम से वे मनुष्य को मन में स्थित अन्धविश्वासी विचारों को त्यागने के लिए सचेत करते रहे क्योंकि वे जनमानस को विचारशील बनाने चाहते थे।

अगर मनुष्य का ह्रदय निर्मल, पवित्र होता है तब उसे जीवन में आत्म–तृप्ति, अर्थात् मनःशान्ति मिलती है, कबीर जी को किसी भी प्रकार के ऊपरी दिखावे, ढोंग स्वीकार नही थे, इसीलिए वे व्यर्थ निर्रथक उपदेश करने वाले लोगों की स्वार्थी वृत्ति पर प्रहार कर उनके झूठे ज्ञान, का पदार्फाश करते थे। कबीर संवदेनशील दृष्टि अत्यधिक पैनी थी।[6] उनका विरोध समाज में फैली हुई रूढ़ियाँ, प्रथाएं–परम्पराएँ, कर्मकांड़ बाह्याचार, लागों की विकृत मनोवृत्तियाँ, दुराचार आदि के प्रति थे, वे लोगों के मन में परिवर्तन लाने की दृष्टि से उनके आचरण, व्यवहार आदि का सक्ष्म निरीक्षण, परीक्षण करते रहे।

आत्मतृप्ति के सामने सब कुछ नगण्य होता है अतः अपने जीवन की तृप्ति अपने हाथ में होती है। उनका मानना था कि मनुष्य जीवहत्या जैसे कृत्य अपने अज्ञान के कारण केवल अपने स्वार्थ के लिए करता है इसलिए वे मनुष्य द्वारा किसी जीव की हत्या करने की उसकी हिंसक प्रवृत्ति का विराधे करते थे। उनका मानना था कि मनुष्य की आत्म–तृप्ति ही उनके सारे विकार, बन्धन नष्ट होने की प्रतीति होती है इसी कारण वे कहते थे कि हमारी सारी थकान, हमारे सारे विकार नष्ट होकर हमारा ह्रदय तृप्त हुआ है।[7]

कबीर स्वयं अनुभवजन्य ज्ञान की राशि थे। उसमें किसी भी प्रकार की मिलावट नही थी। उनके स्वयं के कथन और आचरण एक थे। उनकी वचैारिक दृष्टि विज्ञान की

ISSN 2454-2695
Volume 02 Issue 3
March 2016

भाँति वस्तुनिष्ठ थी। कबीर मे ंकिसी रहस्य का यथार्थ में अभिव्यक्त करने की विशेष कला विद्यमान थी। इसीकारण वे अपने अनुभव सिद्ध तथ्यों को अपनी वैज्ञानिक दृष्टि से अभिव्यक्त करते थे। कबीर की दृष्टि में विचारों में सत्यता, वैज्ञानिक तथ्यपरकता थीं। उनके समस्त मनोभाव उनके अपने सामाजिक अनुभवजन्य ज्ञान की आधारशिला पर आधारित थे। समाज के हर पहलू पर अपनी दृष्टि डालते थे। वे पुरुष–प्रधान समाज–व्यवस्था की विकृतियों पर सती के सतीत्व द्वारा प्रकाश डालते हुए समाज परिवर्तन की दृष्टि से नारी–सकंल्प की अभिव्यक्ति करते थे व साथ ही वे पशहुत्या करने वालों की निन्दा करते हुए समाज में ंफैले हुए दुर्गुणों के प्रति अपना विद्रोही स्वर अभिव्यक्त करते थें। समाज को सही राह पर लाने की दृष्टि से वे अपनी समष्टिपरक भावना अभिव्यक्त करते थे, वस्तुतः इन सभी में ंउनकी सामाजिक परिवर्तन, विकास की मानसिकता विद्यमान रहती थी। वे अपने समय की स्थिति, परिवेश तथा तत्कालीन जनमानस की मानसिकता से अवगत थे इसीकारण वे सच्चे अर्थों ंमें अपनी सत्य, ठोस दृष्टि का परिचय देते हुए अपनी–अपनी मानसिकता अभिव्यक्त करते थे। इसीलिए वे अपने मन की बातें जनमानस से करते हुए भी प्रतीत होते हैं इससे उन की मनोदशा स्पष्ट होती है कि उन्होंने अपनी अन्तर्व्यथा से जन जन की व्यथा अनुभव कर स्व प्रतिबद्धता के साथ साथ सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया करते थे, इसी मंत्र को सामाजिकों के लिए प्रस्तुत किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थः–1 त्रिवेणी नारायण सोनाने 'कबीर और तुकाराम का सामाजिक दर्शन, विकास प्रकाशन, कानपुर।

2 सनुील कलुकर्णी, 'कबीर और तकुाराम के काव्य में प्रगतिशील चेतना',विकास प्रकाशन, कानपुर।

3 रामकमुार वर्मा 'हिन्दी साहित्य का आलाचेनात्मक इतिहास', नव साहित्य प्रेस, इलाहाबाद ।

4 विमल मेहता, 'निगर्णु कवियों के सामाजिक आदर्श', आशा प्रकाशन,नई दिल्ली।

5 राजश्ेवर प्रसाद चतुवर्दी, कबीरदास, प्रकाशन केन्द्र,लखनऊ।

6 श्यामसनु्दरदास (सम्पा.), 'कबीर.गथ्रांवली, इंडियन प्रेस लिमिटेड;प्रयाग।

7 परशुराम चतुवर्दी, 'उत्तरी भारत की सन्त.परम्परा', भारती भड़ांर,इलाहाबाद।